हरिद्रा
(सांस्कृतिक शोध का अन्तर्राष्ट्रीय उपक्रम)
ISSN : 2582-9092

श्रीमद्देवीभागवत में निरूपित रस–विमर्ष

हिमेष तिवारी

पुराण भारतीय ज्ञान परम्परा के वे आकर हैं जिसमें भारतीय इतिहास के साथ ही साथ भारतीय संस्कृति, धर्म, उपासनादि का विज्ञान, व प्राचीन मान्यताएं सरस कथाओं के माध्यम से पाठक के हृदयस्थ हो जाती हैं। पुराणों में लौकिक एवं पारलौकिक आनन्द के साधनभूत उपायों के रूप में विभिन्न विद्याओं तथा षास्त्रों से सम्बन्धित विशयों का वर्णन भी प्रभूत रूप में प्राप्त होता है।

श्रीमद्देवी भागवत महापुराण भगवती पराम्बा जगज्जननी आदिषक्ति की महिमा व उनकी लीलाओं का वर्णन करता है ं जिसमें विभिन्न कथाओं , आख्यानों व उपाख्यानों के माध्यम से भगवती के चरित वर्णन के साथ साथ लोकव्यवहार का भी वर्णन प्राप्त होता है जिसका परम उद्देष्य परमतत्त्व या मोक्ष की प्राप्ति है। लोक में काव्यानुषीलनानन्तर भी ऐसा ही भाव पाठक अनुभव करता है जो काव्य में विद्यमान रस तत्त्व के आस्वादन से ही उत्पन्न होता है । यह रस परमानन्द सहोदर कहा गया है।इसप्रकार पाठक काव्य के माध्यम से इहलोक और परलोक दोनों में मोक्ष प्राप्त करता है काव्य प्रयोजन के अन्तर्गत आचार्य मम्मट के दो प्रयोजन इसका संकेत करते है–1 षिवेतरक्षतये तथा 2– सद्यःपरनिर्वृतये। प्रथम अमङ्गल के नाष से पारलौकिक मोक्ष का मार्ग प्रषस्त होता है तथा द्वितीय काव्यपाठ के काल में ही एक विषिश्ट अनुभव जिसे कवियों ने परमानन्दसहोदर की संज्ञा दी है।आचार्य मम्मट ने इसको वृत्ति में और भी सुस्पश्ट किया है– 'सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादन समुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्'3। काव्य कवि के कर्म को कहते है जो कवि की कृति या कवि निर्मित संसार है जिसका कारक कवि इसकी रचना में स्वतन्त्र है वह जैसे चाहता है वैसी ही रचना करता है इस सन्दर्भ ध्वनिप्रस्थापनाचार्य आनन्दवर्धन की एक कारिका प्रसिध्द है–

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापति ।
यथास्मै रोचते विष्वं तथेदं परिवर्तते ।।

कवि अपने काव्य जगत् का स्रश्टा होने के कारण उसे रुचिकर तथा सहृदयजन संवेद्य बनाने के लिये विभिन्न अलंकारों, छन्दों, गुण, रीति, वक्रोक्ति, व्यङ्ग तथा रसादि का यथावसर प्रयोग करता है। इनमें रसतत्त्व का अपना विषिश्ट स्थान है।नाट्यषास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत मुनि कहते है कि–'नहि रसादृते कष्चिद् अर्थ प्रवर्तते। विभावानुभावव्यभिचारी संयोगाद्रसनिश्पत्ति।5 अर्थात् रस के अभाव में किसी अर्थ का प्रवर्तन ही नहीं होता है और यह रस विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से उत्पन्न स्थायिभाव ही होता है। स्थायिभाव लोक में सहृदयों में पहले से ही विद्यमान होते हैं जो रत्यादि रूप में होते हैंजो विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग में आकर रस रूप में परिणित होते हैं। विभाव के अन्तर्गत आलम्बन और उद्दीपन आते हैं जिसमें आलम्बन लोक में विद्यमान नायक , नायिका आदि होते हैं तथा उद्दीपन के अन्तर्गत प्राकृतिक घटनाएं यथा चांदनी रात , वर्शा आदि आते हैं। अनुभाव नायक, नायिका आदि के अन्तःस्थित रत्यादि के अनुकूल भावों की वाह्य अभिव्यक्ति के भावों को कहते हैं यथा एक दूसरे

ISSN : 2582-9092

को देखकर मुस्कुराना तथा भ्रूक्षेप आदि करना । व्यभिचारी भाव रसों में नाना रूप में विचरण करने वाले तत्त्व होते हैं जो रसों को पुश्ट करके आस्वाद के योग्य बनाते हैं निर्वेद ग्लानि आदि व्यभिचारी भावों की संख्या 33 है।

'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाय वह रस हैं । विभाव आदि से उपचित हुआ स्थायिभाव ही रस कहलाता है । आचार्य विष्वनाथ ने इसे काव्य की आत्मा कहा है– 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'6 अर्थात् ऐसे वाक्य जिनमें रस आत्मा रूप में स्थित हो वह काव्य है। जिसे पढकर पाठक भावविभोर हो जाता है और परमानन्द की अनुभूति करता है।

श्रीमद्देवीभागवत में रस तथा भावों का वर्णन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। वस्तुतः भावों (विभावानुभावव्यभिचारि) से ही रसाभिव्यक्ति या रसानुभूति या रसास्वाद होता है। देवीभागवत में इन काम, क्रोधादि भावों को षरीर में ही स्थित कहा गया है ये सुख, दुःख, जरा, हर्श, षोकादि भाव दैवाधीन कहे गये हैं जो स्वर्ग में प्रभावी होते हैं । ये भाव न केवल मनुश्यों को प्रभावित करते हैं अपितु देवताओं यहां तक कि पषु तथा पक्षियों को भी पुनः पुनः भावित करते हैं–

ब्रह्मादीनां च सर्वेशां तद्वषत्वं नराधिप ।
सुखं दुःखं जरामृत्युहर्शषोकादयस्तथा।।
कामक्रोधौ च लोभष्च सर्वे देहगता गुणाः।
दैवाधीनाष्च सर्वेशां प्रभवन्ति नराधिप।।
रागद्वेशादयो भावाः स्वर्गेऽपि प्रभवन्ति हि।
देवानां मानवानां च तिरष्चां च तथा पुनः।।

मनुश्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि सुख, आनन्द या आत्मसन्तुश्टि प्राप्त करना चाहता है सांसारिक जन जहां रत्यादि में इनकी खोज करते हैं वहीं ज्ञानी या सांसारिक मोह माया से विमुक्त जन निर्वेद में इनका अन्वेशण करते हैं। श्रीमद्देवीभागवतमें कहा गया है कि यदि नाना भावों से समन्वित संगीत, नृत्य तथा वाद्यादि उपस्थित हों तो भला कौन पण्डित होगा जो अधोमुखवास की इच्छा करेगा–

त्यक्त्वाऽधोमुखवासं च कोऽभिवांछति पण्डितः।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च नानाभावसमन्वितम् ।।

श्रीमद्देवीभागवत में कहा गया है कि जो मनुश्य स्वरमान जान या समझ लेता है वह मनुश्य होता हुआ भी देवता हो जाता है और यदि सप्त शडजादि स्वरों को नहीं जानने वाला है तो देवराज होता हुआ भी पषु ही है जो मूर्छना, तान और मार्ग को सुनकर मुदित नहीं होता है उसे सर्वथा पषु ही जानना चाहिए और हरिण आदि पषुओं से भिन्न ही समझना चाहिए क्योंकि ये पषु भी मूर्छना आदि के वषीभूत हो बहेलियों के षिकार हो जाते हैं जो उनके संगीत प्रेमी होने के प्रमाण हैं।इन तत्त्वों से उपचित होकर रस अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है ये रस ब्रह्मा की सृश्टि के मधुराम्लकटुकशायादि रसों से भिन्न अनिर्वचनीय सहृदयसंवेद्य आनन्द विषेश है जो काव्य पढने, सुनने तथा नाट्यादि देखने से अनुभूत होता है। ये सभी

ISSN : 2582-9092

तत्त्व मिलकर रस की उत्कृष्टता बढाते हैं नाट्यादि में तो विषेश रूप से। जिसकी जहां आवष्यकता होती है उसी स्थान पर उन तत्त्वों से चारुता बढती है अन्यथा ऐसे तत्त्व चारुता के अपकर्शक होकर दोश रूप में परिणत हो जाते हैं। जिस प्रकार से श्रृंगार रस में ओजगुण के व्यंजक तत्त्व रस के अपकर्श करते हुए दिखायी देते हैं। इस रस तत्त्व को अच्छे से जानने वाला खुद अनेक काव्य रूपी संसार रचने में समर्थ होता है। श्रीमद्देवीभागवत में कहा गया है कि जिसप्रकार मूर्ख के लिये रूप का क्या महत्त्व, सुन्दर मुख से क्या लाभ और धन से क्या लेना–देना

उसी प्रकार रसमार्ग को अच्छी प्रकार से जानने वाले के लिये राज्य की कोई आवष्यकता नहीं या महत्त्व नहीं होता। ऐसा सुना जाता है कि राजा भर्तृहरि राज्य त्याग भारती की साधना में संलग्न हो गये थे। कवि के लिये काव्य ही संसार होता है उसकी रचना ही उसका राज्य हैं–

किं मुखेन च रूपेण मूर्खस्य च धनेन किम्।
किं राज्येनाविदग्धस्य रसमार्गाविदोऽस्य च।।
स्वरज्ञो ग्रामवित्कामं मूर्छनाज्ञानभेदभाक्।
दुर्लभः पुरुशष्चाश्टरसज्ञो दुर्बलोऽपि वै।।

यहां आठ रसों का ज्ञान रखने वाले , सप्त स्वरों , ग्राम तथा मूर्च्छना का ज्ञान रखने वाले पुरुश को दुर्लभ बताया गया है। यहां रस की संख्या आठ बतायी गयी गयी है जो रूपकों में बतायी गयी संख्या प्रतीत होती है क्योंकि रूपकों के मंचन में स्वर आदि का भी विषेश ध्यान दिया जाता है तथा रसों की संख्या भी आठ स्वीकार की गयी है। आचार्य भरत मुनि के अनुसार रूपकों के आठ रस निम्नलिखित प्रकार से हैं–

श्राङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुत चेत्यश्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।

अर्थात् श्रृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत इन आठ रसों की स्थिति नाट्य में मानी जाती ळे इन रसों का जो क्रम आचार्य भरत मुनि ने दिया इसकी भी अपनी वैज्ञानिकता हैश्रृंगार या रति केवल मनुश्य जाति में ही नहीं अपितु सभी प्राणियों में पाया जाता है और प्राणियों की यह मूल प्रवृत्ति होती है सभी का इसके प्रति आकर्शण होने के कारण इसे प्रथम स्थान दिया गया है । उसका अनुगामी होने के कारण हास्य को दूसरा स्थान , निरपेक्ष भाव या इसका विपरीत होने के कारण हास्य के बाद करुण को स्थान दिया गया है यह निराषास्वरूपात्मक रस है अर्थात् जब इश्ट मिलन की आषा समाप्त हो जाती है तो करुण रस का क्षेत्र प्रारम्भ होता है, करुण का निमित्तभूत होने के कारण इसके पष्चात् रौद्र का स्थान है और यह रौद्र अर्थ प्रधान कहा गया है, इसके पष्चात् धर्म प्रधान वीर रस का स्थान है क्योंकि कामार्थ धर्म के मूल हैं भयभीत को अभय प्रदान करना वीर रस का कार्य है अतः इसके बाद भयानक को स्थान दिया गया है, वीर रस के परिणाम स्वरूप ही बीभत्स दृष्य उत्पन्न होता है अतः भयानक के बाद बीभत्स को स्थान दिया गया है, तथा वीर के बाद अद्भुत होता है।इस रस का विधान नाट्य में इसीलिये सबसे अन्त में किया जाता है। इसप्रकार से अभिनवभारती के कर्ता आचार्य अभिनव गुप्त ने रसों के क्रम की प्रासंगिकता को दर्षाया है।

ISSN : 2582-9092

इन आठ रसों के स्थायीभावों को नाट्यषास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत मुनि निम्नलिखित कारिका में बद्ध किया है–

रतिर्हासष्च षोकष्च कोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयष्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः।।

अर्थात् रति, हास, षोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, तथा विस्मय ये आठ स्थायिभाव रसों के क्रम से हैंश्रृड़गार का रति, हास्य का हास, करुण का षोक, रौद्र का क्रोध, वीर का उत्साह, भयानक का भय, बीभत्स का जुगुप्सा तथा अद्भुत का स्थायिभाव विस्मय है। परवर्ती साहित्यषास्त्रियों ने इन भावों की विस्तृत व्याख्या की हैं। यही स्थायिभाव ही रस रूप में परिणत होते हैं।

अन्य स्थान पर श्रीमद्देवीभागवत में रसों रसों की संख्या नव मानी गयी है जो परवर्ती काव्यषास्त्रियों ने भी काव्य में षान्त रस को नवम रस के रूप में स्वीकार किया हैकहा गया है–

रसानां च नवानां वै द्वावेव मुख्यतां गते।
श्रृंगारकः षान्तिरसो विद्वज्जनसभासु च।।

अर्थात् नव रसों में से दो ही मुख्य रस हैं जो विद्वज्जन की सभाओं में भी प्रामुख्य प्राप्त हैं – एक श्रृंगार तथा दूसरा षान्त। आचार्य मम्मट ने भी'निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति षान्तोऽपि नवमो रसः' कहकर नवम रस को स्वीकार किया है और कहा है कि षान्त नवम रस है तथा निर्वेद उसका स्थायिभाव है। कुछ विद्वान् षम को षान्त रस का स्थायिभाव मानते हैं। इसप्रकार श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के मत में काव्य में रसों की संख्या नव ही है। रसानां च नवानां वै' कह देने से भक्ति और वात्सल्यादि रसों का निरसन हो जाता है जो कि कुछ परवर्ती विद्वान् स्वीकार करते हैं। ये वस्तुतः रस नहीं अपितु भाव होते हैं जैसा कि आचार्य मम्मट ने भाव का लक्षण करते हुए कहा है–

रतिर्देवादिविशया व्यभिचारी तथाऽञ्जितः।।
भावः प्रोक्तः।

अर्थात् देवादि विशयक रत्यादि तथा व्यङ्ग्य व्यभिचारिभाव 'भाव' कहलाते हैं। यह 'भाव' स्थायिभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के साथ आने वाले भावों से भिन्न है। यहां रति के साथ अन्य स्थायिभावों का भी परिगणन करना चाहिए तथा आदि पद से गुरु, राजा, पुत्रादि का ग्रहण होता है। देव विशयक रति भक्ति तथा पुत्र विशयक रति वात्सल्य आदि भाव कहे जाते हैं। श्रीमद्देवीभागवत महापुराण में दो रसों को मुख्य या मूल रस के रूप में स्वीकार किया गया है जिसमें एक श्रृंगार तथा दूसरा षान्त रस है उसमें भी श्रृंगार रसों के राजा के रूप में प्रतिश्ठित बताया गया हैं–

रसानां च नवानां वै द्वावेव मुख्यतां गते।
श्रृंगारकः षान्तिरसो विद्वज्जनसभासु च।।
तयोः श्रृंगार एवादौ नृपभावे प्रतिश्ठितः।
विश्णुर्लक्ष्म्या सहास्ते वै सावित्र्या चतुराननः।।

ISSN : 2582-9092

मौलिक रस का सिद्धान्त साहित्य षास्त्र में प्रचलित कुछ साहित्य षास्त्री चार रसों की, कुछ दो, कुछ एक रस के मौलिक सिद्धान्त को मानते हैं। तथा उनमें भी किसी रस रस को सर्वश्रेश्ठ मानने वाले विद्वान् अपने–अपने मतानुसार अपने अभीश्ट रस को श्रेश्ठ सिद्ध करते हैं उसीप्रकार श्रीमद्देवीभागवत महापुराण श्रृंगार और षान्त रसों को मुख्य रस कहा गया है । यहां षान्त रस के लिये षान्ति रस प्राप्त होता है तथा श्रृंगार को रसराज कहा गया है।

इन दो रसों को मुख्य रस कहने का तात्पर्य यह हो सकता है कि अन्य सातों रसों की उत्पत्ति श्रृंगार से ही होती है तथा इन रसों से उसकी स्थिति भिन्न है इन आठों रसों के बाद की स्थिति षान्त रस की होती है दूसरा यह हो सकता है कि षान्ति ही परम उद्देष्य है और मोक्ष का माध्यम है श्रीमद्देवीभागवत महापुराण में रस के प्रमुखत्व तथा भक्ति भाव की प्रधानता के कारण भी इसे मुख्य रसों में परिगणित किया गया हो।रसों के चार मौलिक रसों के सिद्धान्त को धनिक और धनंजय आदि विद्वानों ने नव रसों के स्थान पर चार ही मूल रसों को स्वीकार करते हैं जो चित्त की चार अवस्थाओं पर निर्भर करता है ये चित्त की चार अवस्थायें हैं – विकास, विस्तार, विक्षोभ और विक्षेप । चित्त की ये चारों अवस्थाये क्रम से श्रृंगार , वीर, बीभत्स और रौद्र रस में होती हैं और अन्य हास्य, अद्भुत, भयानक और करुण में भी यही अवस्थायें होती हैं अतः उन्हीं रसों से क्रमषः इन रसों की उत्पत्ति बतायी गयी है आचार्य भरत मुनि ने भी चार रसों की मुख्यता माना है –

श्रृंगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिबीभत्साच्च भयानकः।।

इसी प्रकार अपने–अपने मतानुसार कुछ विद्वान् एक ही रस को मुख्य रस के रूप में स्वीकार करते हैं । महाकवि भवभूति ने अपने उत्तररामचरित में करुण को ही एक मात्र प्रधान रस मानते हैं भोजराज ने अपने श्रृंगारप्रकाष में श्रृंगार को ही एक मात्र प्रमुख रस माना है, आचार्यविष्वनाथ नारायण पण्डित के एक अद्भुत रस मात्र को मूल मानने का उल्लेख करते हैं अभिनवगुप्त ने षान्त को ही एक मात्र मौलिक रस माना है। है। श्रीमद्देवीभागवत में कहा गया है कि –

मधुरालापनिपुणै रताः षान्तिरसे हि ते।
क्व ज्ञानं क्व च वैराज्ञं वर्तमाने मनोभवे।।

अर्थात् जो भाशण की मधुरता के साथ मनोभाव से षान्तरस में वर्तमान हैं उनके लिये ज्ञान और वैराज्ञ की क्या आवष्यकता है अर्थात् यह षान्त रस ही उनके लिये समस्त श्रेय के द्वार को खोलने वाला है। एक स्थान पर माता षक्ति रौद्र और श्रृंगार रस से युक्त रूप का वर्णन किया गया है–

रौद्ररसयुक्तां कान्तां श्रृंगाररससंयुताम्।
तां वीक्ष्य विपुलापाङ्गीं त्रैलोक्यवरसुन्दरीम्।
सुरक्तनयनां रम्यां कोधरक्तेक्षणा तथा ।।

ISSN : 2582-9092

इसप्रकार श्रीमद्देवीभागवत महापुराण में रसों के विशय में जो सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है उसी का निदर्षन यहां किया गया है इसमें प्रायः सभी रसों का प्रयोग द्रश्टव्य होता है किन्तु षान्त रस की प्रमुखता दिखायी देती है। उपरोक्त विवेचन से स्पश्ट होता है कि यहां आठ या नव रसों का उल्लेख है तथा श्रृंगार और षान्त को मौलिक रस माना गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. काव्यप्रकाष, 1/2
2. तत्रैव
3. तत्रैव
4. ध्वन्यालोक
5. नाट्यषास्त्र, अध्याय,6
6. साहित्यदर्पण, 1/3
7. श्रीमद्देवीभागवत महापुराण,4/2/8–10
8. तत्रैव, 4/2/22
9. तत्रैव, 6/27/22
10. तत्रैव, 6/27/23
11. तत्रैव, 6/27/15
12. तत्रैव, 6/27/20
13. नाट्यषास्त्र, 6/16
14. काव्यप्रकाष 4/30
15. श्रीमद्देवीभागवत महापुराण,5/27/56
16. काव्यप्रकाष, 4/35
17. तत्रैव,4/35–36
18. श्रीमद्देवीभागवत महापुराण,5/27/56–57
19. नाट्यषास्त्र,
20. श्रीमद्देवीभागवत महापुराण,5/27/61
21. तत्रैव, 5/30/18–19

शोधच्छात्र – धर्मागम विभाग
संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकाय, काषी हिन्दू विश्वविद्यालय